

तारन-त्रिवेणी

मूल-लेखक

परम पूज्य आचार्य

श्रीमद्भूतारणतरण स्वामी जी महाराज

प्रस्तावना-लेखक

डॉ० हीरालाल जी जैन एम ए, एल एल बी

प्रोफेसर,

किंग एडवर्ड कॉलेज, अमरावती

पद्यानुवादक

रत्नकरदश्रावकाचार व भणामर के पद्यानुवादक,

श्री अमृतलाल "सचल"

प० परमेश्वरीदास जैन
संचालक,

वैनेन्द्र प्रेम, ललितपुर ।

सहायिचार अपुरादक के आधीन

प्रकाशक

श्री तारणवराह प्रथम मासा
वीर्य क्षेत्र श्री नि भेपी जी,
पो० सु गावली (म० भा०)



श्री _____



निवेदन

तारणसमाजभूषण धर्मदिवाकर पूज्य श्री नरेशचारी लालचन्द्र जी महाराज ने मंत्री पद के समय अपने स्वामी धर्मरत्न स्वर्गीय लालदास जी की व अपनी स्वयंश्रितियां त्रिदुषी मातेश्वरी जी की पुण्य स्मृति में इस ग्रंथ में १००० प्रतिष्ठा सन् ४० में धर्मप्रेमी जनों को भेंट-स्वरूप वितरण की थी। निम्नका उपयोग अच्छा हुआ तब प्रथमाला ने पुनः यह द्वितीय संस्करण जिसमें १२६०० प्रतिष्ठा मुद्रित कराई गई है। निम्नसे ६०० प्रतिष्ठा श्रीमान् मन्मूलाल कन्देरीलाल जो डेरिया बाबाई २०० प्रतिष्ठा श्रीमान् सेठ वसंतलाल मुस्लीधर जी का बालों की ओर से तारण समाज के प्रत्येक शिष्याओं में व स्वाध्याय प्रेमी जनों को भेंट स्वरूप देने का प्रयत्न की जायगी। शेष १२०० प्रतिष्ठा प्रथमाला के नाम में रहेंगी।

अब और भी १) सज्जा निगी प्रतिया क
 ओर से विनय कराना चाहे ये ४०) प्रति मैकहा
 गगाकर या संस्था के ही द्वारा विनय करने की क
 प्रदात करें। अथवा जो स्वाध्याय नेमी सज्जा एवं
 स्वाध्याय के माथ हा माथ अपने इष्ट मित्रों को इ
 स्वाध्याय कराना चाहे ये ४) का मरिगाकर भेदपर
 प्रतिया पोस्ट पासन्व द्वारा मंगलें। जिसका पोस्टेड
 मी रहगा।

जिग सज्जा न विनय कराइ हि क करार्वेगे,
 सभी साहित्य नेमी सज्जा भयवाइ के पात्र हैं।

अनुबंधमी, १६ जून १९४३
 तारण सं० ५०५

मंत्री-ना० ल० प्रया
 का नि भेया का धन



लहर-त्रिषेणी पर दो शब्द

यदि साहित्यक प्रलय का समय आजावे और
 से फटा जाय कि तुम भारतीय साहित्य में से
 वल उस साहित्य को बचा सकते हो जो तुम उसमें
 और नया नूतन रङ्गन वाला समभते हो तो
 जिना किमी संकीर्ण के उस साहित्य की रक्षा करने
 प्रयत्न करूंगा जो अध्यात्म से सम्बन्धी रम्यता है
 शाश्वत उत्तमों की रोज की ग है, जहा मनुष्य
 की दृष्टि वर्तमान के अन्तर्गत और अन्तर्गत के
 विकास पर डाली गई है तथा जहा सुख और शान्ति
 साधन पराधीन न रखकर स्वाधीन दिखलाया गया
 है। प्राचीनतम साहित्य में वैदिककाल के उपनिषद्
 य इसी कोटि के हैं और विदेह राजपि जनक उर्ही
 मयोगी महात्माओं में से एक बतलाये हैं। मध्य-
 प्रयत्न अनेक सन्त महात्मा ऐसे हुए हैं जिन्होंने
 अपनी धारी में आधिभौतिक जगत का आन्तरिक
 र्शन कराने तथा सच्चा सुख बतलाने का प्रयत्न किया
 है। उत्तर भारत के बर्धर नानक, दादू, पलटू आदि
 तथा महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, तुकाराम भोगोपंत आदि
 लोगों ने अपने अपने समय में, अपने अपने प्रदेश की
 सत्ता का ध्यान थोड़े क्रियावाह और अधविश्वास से
 टाकर सच्चा शुद्ध भावना और हृदय की पवित्रता
 की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। शैलों के

भीतर भी महात्मा बुद्ध के पञ्चम बाण्डोपद, राग, द्वेष, गुण्डाही आदि अनेक ऐसे संत हुए हैं जिनका सम्प्रदाय विरयव्यापक कहा जा सकता है।

जैन धर्म में अध्यात्म की महिमा विशेष है। आत्मा के संघर्ष में जितना चिन्ता और अनुसंधान कहा किया गया है उतना किसी भी अन्य धर्म के भीतर किया गया नहीं पाया जाता। जैन धर्म मूलतः भावनाप्रधान है। सुख-दुःख, सुख पाव, अस्वच्छाई बुराई का संघर्ष कहा पाया अज्ञाना में नहीं किन्तु अतृप्ति के आधीन बतलाया गया है। इन धर्म में आध्यात्मिक योगियों की संख्या बहुत अधिक है, जिनमें श्री कुन्दकुन्दार्य का नाम सबसे प्रथम याद आता है। उनके अनेक ग्रंथों में आत्मा से परमात्मा जाने का मार्ग दर्शाया गया है। उनकी परम्परा योगिन्द्र व रामसिंह जैसे मुनिर्धान अत्यन्त निर्भीकता से कायम रखी है, जिनके परमात्मप्रकाश व पादुच्छोहा नामक ग्रंथ जैन साहित्य की अनुपम विधि हैं। उनका उपदेश है कि सुख के लिये बाहर पदार्थों पर अवलम्बित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उससे केवल दुःख और सन्ताप ही बढ़ेगा। मया सुख इन्द्रियों पर विजय और आत्मध्यान से ही मिलता है। यह सुख इन्द्रियगुणाभासों के समान क्षणभंगुर नहीं है, किन्तु चिरस्थायी और कल्याणकारी है। आत्मा की शुद्धि

के लिये न तीर्थचल की आवश्यकता है, न नाना प्रकार घेप धारण करने की । आवश्यकता है केवल राग और द्वेष की प्रवृत्तियों को रोककर आत्मानुभव की । मूढ मुद्दारे से, केशलौच करों से या नग्न होने से ही कोई मछा योगी और मुनि नहीं कहा जा सकता । योगी तो तभी होगा जब समस्त अंतरंग परिग्रह छूट जायें और मन आत्मध्यान में लयलीन हो जाये । देवदर्शन के लिये पापाण के बड़े बड़े मन्दिर बनाने तथा तीर्थों तीर्थ भटकने की अपेक्षा अपने ही शरीर के भीतर निवास करने वाले देव का दर्शन करना अधिक सुगम और कल्याणकारी है । आत्म ज्ञान से हान विशाखा कण रहित घुप और पयाल घूटने के समान निष्कल है । ऐसे व्यक्ति को न इन्द्रिय सुख ही मिलता है और न मातृ का माग ही ।

इसी प्रकार के एक बड़े महात्मा सोलहवीं शताब्दि मे घुन्देलखंड मे हुए हैं जिनका नाम है सरनतारन स्वामी । आत्ममनन और तद्विषयक ग्रंथ रचना के अतिरिक्त इनका प्रभाव हमसे भी जाना जाता है कि उनकी विचार धारा को मानने वाला एक सम्प्रदाय जैन समाज के भीतर आन तक भी कायम है जो 'तारनपंथी' समाज के नाम से प्रसिद्ध है । यह समान मूर्ति पूजा को नहीं मानता, यह 'समय' अर्थात् मिथ्यात व तन्त्रज्ञान की प्रजा करता है ।

किन्तु दुर्भाग्यवश बहुत समय तक तरनतारन स्वामी
 के बारे हुए ग्रंथों की प्रसिद्धि नहीं हुई, न उका
 उशोधन व प्रकाशन हुआ। प्रत्युत उा समान में
 उनके ग्रंथों को गुप्त ररने की प्रवृत्ति भी हो गई थी।
 रर कोई भी समान, चाहे वह कितना ही कट्टर क्यों
 न हो, समय की माग और उसके प्रसार म यय नहीं
 सकता। समय एक ऐसा व्यक्ति रखा कर देता है जो
 उम कट्टरता के दुग को जीतकर हा-स्वातन्त्र्य की
 धारा बहा देता है। गत आठ दश वर्षों से जैन-धम
 भूपण महाराजी शीतलप्रसाद जी का ध्यान तरनतारन
 साहित्य की ओर गया है, निगके फलस्वरूप उक्त
 समाज के उन्नतिशील रुज्जा के सहयोग द्वारा वे उस
 साहित्य की अनेक विधिया को प्रकाश में लाने म
 सफल हुए हैं। महाराजी ने अबाक कोइ पाच
 सात ग्रंथ इस साहित्य के मूल, भावानुगत व विशेषग्रंथ
 सहित सम्पादि करके प्रकाशन कराये हैं। इन
 ग्रंथों की भावभगी बहुत कुछ अल्पटी है। जैन धम के
 मूलसिद्धांत और शाध्यात्मवाद के प्रधान तत्त्व तो
 इसमें स्पष्ट भल्लजते हैं, पर वर्ता की रचनाशैली किसी
 एक साचे में डली और एक धारा में सीमित नहीं है।
 यह स्पष्ट है कि कवि किमी सीमा को बाधकर अपने
 विचार व्यक्त नहीं कर रहे हैं, वि-सु विचारों का अ्रेक
 जिस ओर, निरु प्रकार पय चला गया, तब तैमा
 उन्हें प्रयित करके रर दिया। और इस कार्य में

बहोने जिस भाषा का अयलम्बन लिया है वह
 विलुप्त जननी निजी चीन है। वह भाषा के सर
 देश-प्रदेश-भेदों व काल-भेदों के परे है। न वह सर
 है, न कोई प्राकृत-अपभ्रंश है और न कोई प्रचा
 देशी भाषा। मेरी समझ में उसे 'तरनतारन भ
 ही कहना ठीक होगा, जिसका परिचय उन ग्रंथों
 अवलोकन से ही पाया जा सकता है।

इस साहित्य के तीन छोटे छोटे ग्रंथ हैं—
 पंडित पूजा, मालारोहण और कमल बत्तीस
 इनमें शुद्ध भावना, शुद्धाचरण और विशुद्ध ज्ञान
 जोर दिया गया है। पर जो गहन और मनोहर
 उनमें भरे हैं उनका उत्त अटपटी शैली के कारण
 साधारण द्वारा पूरा लाभ उठाया जाना पठिन
 उनके ऐसे रूपान्तर की जरूरत थी जो सरल, सु
 और हृदयमाही हो। ऐसा रूपान्तर मुझे प्रिय अमृत
 "चंचल" के पद्यानुवाद में देखने को मिला। चंचल
 कविता मूल के भाव की रक्षा करती हुई अत
 सुन्दर और लोकरुचि के अनुभूत है। मुझे अ
 और विश्वास है कि इस कविता द्वारा तरनत
 स्वामी के उपदेशों का अच्छा प्रचार होगा।
 'तारन-त्रिवेणी' जनता का रस बलयाण करेगी।

विंग एडवर्ड कासेज,

अमरावती

—हीमालाल जैन

अपनी बात

'भारत-त्रिवेणी' सालहवीं शताब्दी में हुए, एक पहुँचे हुए जैन संत की तीन महान कृतियाँ का (संस्कृतपूजा, मालारचय, कमल वत्ताली) एक परिवर्तित सामूहिक नाम है। इन ग्रंथों में जहाँ कहीं भी कवि की दृष्टि दौड़ा है, वहीं उन्हीं आध्यात्मिकता का दीदार हुआ है। आत्मा ही देव है, आत्मा ही शास्त्र है, आत्मा ही गुरु है, आत्मा ही तीर्थ है और आत्मा ही धर्म है। कवि-यज्ञो भीरा के समान इन ग्रंथों में, यदि कोई भावुक देखे तो वे एक तरह से गाते में दिखाई पड़ते हैं—

“मेरो तो आत्म दयाल दूमरो न कोई रे।

जाये सिर ज्ञान-मुकुट मेरो नाथ सोई रे। ”

साम्प्रदायिकता या हीनर भेद भाव से अपनी कृतियाँ एक तरह से सजवा अज्ञाती हैं और अगर गुरुदेव के अनुयायीगण आज तक उनके महान ग्रंथों का आनमार्थिकों में बँद न रख, विद्वानों को इस बात का अखर देते कि वे देखते कि उन ग्रंथों में परम पूज्य स्वामी ज्ञानेश्वर के नाम क्या बसावत कर गये हैं और उन्हीं ने किस ऐसे सबप्रिय और चुम्बक से आकर्षक मार्ग को अज्ञानियार किया था कि जिससे न कुछ समय में ही जाति पाँति के भेद भाव का छड़कर उनके लगभग ५,५३००० शिष्य होगये थे, ता आज संसार का बल्याण ही जाता और स्वामी जी का नाम संसार के बचा बचा का उदान पर जाता।

—अमृतलाल “बचल”

रुद्रर्षण

तारणध्यामी व जिनवाणी के अनन्य भक्त
धर्मरत्न,

स्वर्गाय श्रीमान् प० लालदाम जी

क दूर पहुँचे हुए

रुद्र रमलों में

५

तारणध्यामी आचार्यजी के
आप भक्त महान् थे ।
प्रतिपक्ष अधर से आपने
उनके निकलते गान थे ।
उनके प्रभुओं पर न फिर
क्यों आपका अधिकार हो ?
'तारण त्रिवेणी' आपकी है,
आपको स्वीकार हो ।

—वचन—

प्रथम धारा



आत्म ही है त्रेत्र निर्गजन,
आत्म ही मद्गुरु भाई !
आत्म शास्त्र, धर्म आत्म ही,
तीर्थ आत्म ही सुखदाई ।
आत्म मनन ही है रत्नत्रय—
पूजित अमगाहन सुखधाम ।
जैसे देव, शास्त्र, मद्गुरुवर,
धर्म, तीर्थ को मत्त प्रणाम ।



पढित पूजा

आत्मस्य ऊर्ध्वस्य,
 ऊर्ध्वं मद्भाषशाश्वत ।
 मित् स्थानेन तिष्ठते,
 नानेन शाश्वत २३ ।

[७८]

ओम् रक्षा है थीर रहेगा
 सनन उच मद्भाषाणार ।
 परमब्रह्म, आनन्द ओम् है,
 ओम् प्रमूर्त, शूय—आहार ।
 ओम् पंच परमेष्ठी मन्त्रि
 ओम् ऊर्ध्व गति वा धारी ।
 रेयल ज्ञान निष्ठु ज ओम् है,
 ओम् अमर, ध्रुव, अविधारी ।

निश्चय नय जानते,
 शुद्ध तत्त्व विधीयते ।
 ममात्मा गुण शुद्ध,
 नमस्कार शाश्वतध्रुव ।

[दो]

जिन्हें दस्तु के मत, चित् क्षायक,
 या निश्चय नय का है ज्ञान ।
 उही अनुभवी, पारमि करते,
 निज स्वरूप की सन् पहिचान ।
 अतमल-आसीन आत्मा,
 हा है अपना देव ललाम ।
 आत्मद्रव्य का अनुभव करना,
 ही है सचा, अचल प्रणाम ।

ॐ नम विष्णवे योगी,
सिद्ध भयन् शाश्वत ।
पण्डितो मोषि जानते,
देवपूजा विधीयते ।

[तीन]

योगीजन नित श्योम् नम वा,
गुह्य ध्यान ही धरते हैं ।
'सोऽहं' पद पर चटकर ही ये
प्राप्त सिद्ध-यद् करते हैं ।
'श्योम् नम ' लपते लपते जो
नित स्वरूप मे रमजाता ।
वही देव पूजा करता है,
पन्ति यह ही कहलाता ।

ह्रींकार गान उत्पन्न,
 आकार च बदते ।
 अरद्द सर्वश उक्त च,
 अचक्षु दर्शन दृष्टते ।

[चार]

जगत पूज्य अरद्दत त्रिनश्वर,
 त्रिसदा देत नम उपदश ।
 साम्य त्रिष्टि सवज्ञ सुनात,
 त्रिसदा धर धर म सदश ।
 जो अचक्षु दशन धर गोचर,
 जो चित्त चमत्कार सम्पन्न ।
 ओंकार की शुद्ध बदना,
 करती यही ज्ञान उपन्न ।

मति श्रुतश्च सपूर्णं,
 गान पंचमर्षं ब्रुव ।
 पंडितो सोऽपि ज्ञानते,
 ज्ञानं गायं म पूजते ।

[पाठ]

मति, श्रुत, अत्रधि, मन पययमे,
 ज्ञान करे निसम कल्लोल ।
 पंच ज्ञान केरल भी निसम,
 छोड़ रहा नित उदाति अलोल ।
 एसे आत्म-शास्त्र को ही नित,
 जो पूजे विवेक शिरमौर ।
 वही सच पंडित प्रसाधर,
 वही ज्ञान धन का है ठौर ।

ॐ हा श्रियंशु,
 दर्शन च तानं ध्रुवं ।
 देव गुरु भुवं चरण,
 धम मृद्धारणाश्वतं ।

[६६]

ही श्री के रूप गोठर,
 करते निसमें रिमल प्रकाश ।
 अमर ज्ञान, दर्शन का है जो,
 एक मात्रतम दिव्य निवास ।
 वही परम ऋष्ट ओम ही,
 है त्रिभुवन मंडल मे मार ।
 वही नय,गुरु,शाम्भु आचरण,
 वही धम सद्भावगार ।

शीघ्र श्रृंखरणं शुद्ध,
 त्रैलोक्य लोभितं नृप ।
 रत्नत्रय मयं शुद्ध,
 पटितो गुण पूजने ।

[मात]

केवलज्ञान मुकुट मं जिसको,
 तीनों लोक दिव्याते हैं ।
 जिसके स्वाभाविक बल बल श,
 निधि ल धार न पाते ह ।
 रत्नत्रय की सुरसरिता से,
 शुद्ध हुआ जो द्रव्य मगार ।
 उनी आत्म रूपी सद्गुरुकी,
 करत है पूजा विधान ।

देव गुरु श्रुत वद,
 धर्मशुद्ध च विष्णुते ।
 तिथ्यर्थ धर्मलोः च,
 स्नान च शुद्ध जलं ।

[आठ]

आत्म ही है देव निर्जा
 आत्म ही मद्गुरु भाइ !
 आत्म शास्त्र, धर्म आत्म ही,
 तीर्थ आत्म ही सुगदाइ ।
 आत्म मान ही है रत्नत्रय-
 पति अरगादा मुखवाम ।
 ऐसे देव, शास्त्र, सद्गुरुवर,
 धर्म, तीर्थ को सत्त प्रणाम ।

चेतना लक्षणो धर्मा,
 चेतिर्यत सदा बुधे ।
 ध्यानस्य वर्त शुद्ध,
 ज्ञान स्नान पठित ।

[नौ]

चिन्तनम्, भय, शुद्ध आत्मा,
 मी चेतनता है पहिचान ।
 बुद्धिमान जन नित्य निरंतर,
 करते हैं उस हा का ध्यान ।
 नदी, सरोवर म करते हैं,
 अथगाहन जड अज्ञानी ।
 आत्म ज्ञान तल से प्रचोलन,
 करते सत्यदित नानी ।

शुद्धतत्त्व च वर्दते,
 त्रिभुवनम् नानेश्वरं ।
 नान मयं जल शुद्ध,
 स्नान नानं पठित ।

[२५]

हस्तमलकवत् तिमको तीनों,
 नुरन, चराचर प्राणी हैं ।
 उम्मी प्रद्व को ध्याते हे वम,
 नो बुधान, विज्ञानी ह ।
 शुद्ध आत्म है स्वच्छ सरोवर,
 कल कल परता तिमम ज्ञान ।
 इसी नान रूपी जग मे नत,
 पठित नन वरने (ई) स्नान ।

सम्यक्तस्य जलं शुद्ध,
सपूर्णं सरं पूरितं ।
स्नानं पिबत गणधरन,
ज्ञानं सरनंतं ध्रुवं ।

[ग्यारह]

सम्यग्दर्शनं रूपी तिसमे,
भरा हुआ है नीर अगम्य ।
ऐसा है वह परम ब्रह्म का,
भव्यो ! सरवर अविचलरम्य ।
महा मुनीश्वर श्री गणधर जी,
तिनकी शरण अनेकों ज्ञान ।
इस सर मे ही अगगाहन कर,
करते इसका ही जल पान ।

शुद्धतत्त्व च वदंते,
 त्रिभुवनम् गानेश्वरं ।
 गान मयं जल शुद्ध,
 स्नानं गानं पठितं ।

[अथ]

हृत्कमलवत् त्रिमको तीनों,
 भुवन, चराचर प्राणी है ।
 उमी प्रज्ञ को ध्याते हैं हम,
 जो बुधजन, विद्वानी है ।
 शुद्ध आत्म है रज्जु सरोवर,
 जल कटा करता त्रिममे ज्ञान ।
 इसी ज्ञान रूपी जल में नित
 पठित जन करने (हैं) स्नान ।

सम्यक्तस्य जलं शुद्ध,
संपूर्णं सरं पूरितं ।
स्नानं पिबत गणधरन,
ज्ञानं सरनेतं ब्रुव ।

[श्यारह]

सम्यान्शीन रूपी जिसम,
भरा हुआ है नीर अगम्य ।
ऐसा है वह परम ब्रह्म का,
भक्त्यो ! सरवर अविचल रम्य ।
महा मुनीश्वर था गणधर जी,
निमग्न शरण अनेकों ज्ञान ।
इस सर में ही अशुद्धि न कर,
करते इसका ही जल पान ।

कृपाय चतु अनतानं,
 पुण्य पाप प्रक्षालित ।
 प्रक्षालित कर्म दुष्ट च
 धानं स्नान पटित ।

[चौदह]

पुण्य, पाप दोनों रिपुआ को,
 क्षय कर देता है यह तीर ।
 मलिन कृपाय छिप जाती हैं,
 देख करिम से इससे तीर ।
 कर्म-रूपनि की सेना को भी
 कर देता यह तल भट चूर
 एसा है यह ज्ञान-उत्क क
 अमगहन मंगल परिपूर

प्रचालितं मनश्चपलं,
त्रिविधिं कर्म प्रचालिते ।
पठितो वसु संयुक्त,
आमरुत भूषणं कियते ।

[पृष्ठ १]

वस्य च धर्म गङ्गाय,
 आभरणं रत्नत्रय ।
 मुद्रना मम मुद्रस्य,
 मुहुट ज्ञानमयं ध्रुव ।

[सोलह]

शुद्ध आरम-सद्भाव-धर्म ह
 हे पंडित का करल चीर
 मिलमिल करजा रत्नत्रय ह
 हे असका भूषण गभीर
 नमताभावमयी मुद्रा ह
 हे इसकी मुद्रिका अनूप
 अविनाशी, शिव, सत्यज्ञान ह
 इसका ध्रुव दिरीत विद्व प

दृष्टं शुद्धं ह्यौ न,
मिथ्यादृष्टि च स्वल्पः ।
अमत्य अनृतन इत्थं
अथैत दृष्टि न दातेः ।

[मन्त्र]

दृष्टं शुद्ध नमस्य च,
 सम्यक्त्वं शुद्ध बुध ।
 ज्ञानं मय च गं पूर्ण,
 ममलक्ष्मि मदा बुधै ।

[अठागह]

ज्ञान-तीर व अवगाहन से
 असत् भाव भिन्न जाता है
 परम शुद्ध सम्यक्त्वं मात्र ही
 फिर हिय म दिग्ब पाता है
 शुद्ध बुद्ध ही दिग्बत है फिर
 आखों म प्रत्येक घड़ी
 दिग्बता है वम यही ज्ञान ही
 अंतर म मच रही भड़ी

लोकमूढे न दृष्टव,
देव, पार्वड न दृष्टते ।
अनापतन मद अष्ट च,
शकादि अष्ट न दृष्टते ।

[उग्रोप]

मानस्य स किं कर्म
देव मुखात् न

हं वा
८ ।

धिन श एव कर्म

श्री कृष्ण

कृष्ण

दृष्टं शुद्धं परं सार्धं,
दर्शनं मलनिमुक्तयः ।
ज्ञानं भवशुद्धसम्पदयः,
पडितो दृष्टिभंगवुधैः ।

[श्रीमः]

दृष्टं शुद्धं पदं
 दर्शनं मलं च
 ज्ञानं मयं शुद्धं च
 पण्डितो ह्यपि सदा

सुखं व्यासिष्ये व.

सुखं निष्पद्ये व.

सुखं संपद्ये व.

सुखं गतिं पदितं ।

[सुखं]

सुखं किं भवति
सुखं भवति
सुखं भवति
सुखं भवति
सुखं भवति
सुखं भवति

उच्चारण ऊघ शुद्ध च,
 शुद्ध तत्त्वं च माना ।
 पटितो पूज आराध्यं,
 जिन समय च पूजर्त ।

[चाईम]

उध्य-प्रणायन प्रणव मंत्र का,
 करना मुख से उच्चारण ।
 अपन निमल हृदय-मन्दिर में,
 करना शुद्ध भाव धारण ।
 यश एक पटित-पूजा है,
 पूजनीय, शिव, सुखदाई ।
 शुद्ध आत्मा का पूजन ही,
 है जिन पूजा है भाई ।

पूजत च जिर्न उक्त ,
 पंडितो पूजतो मदा ।
 पूनर्न शुद्ध साधं च,
 मुक्ति गमन च ऋरुण ।

[तेईस]

द्योत्मद्रव्य की पूजा करना,
 वन को विग रच अनुगामी ।
 यही णन जग में करता है,
 पंडितपूजा शिरगामी ।
 शुद्ध आत्मा ही भर-पल से,
 तरने सा यस ' है साधन ।
 मुक्ति चाहत हो यन्ति तुम तो,
 करो इसी का आराधन ।

अदेव अज्ञान मूढ च,
अगुरु अपूज्य पूजन ।
मिथ्यात्व सकलजानते,
पूजा ससार मानन ।

[चौथीम]

इस' किंतु देवत्वहीन जो
य 'अदेव' कहलाते हैं ।
वही 'अगुरु' जड़ जो गुरुजनस्य,
भूटा ताल दिद्याते हैं ।
ऐसे इन 'अदेव' 'अगुरों' की
पूजा है मिथ्यात्व महान ।
जो इनकी पूजा करते ये,
भय भव में फिरते अज्ञान ।

तेनाह पूज शुद्धं च,
 छुद्ध तत्त्व प्रकाशकं ।
 पढितो यदना पूजा,
 मुक्तिगमन न सशय ।

[पद्योम]

जगत् के पुत्रों का पिता
 करता है जो प्रतिपालन ।
 वही ब्रह्म है पूज्य, विहागण ।
 करा उसी का आराधन ।
 अगुरु, अदेवादिक की पूजा,
 आरागमन यत्नो है ।
 आत्म अर्चना, आत्म-व्यदना,
 मन्त्र-वाक्य पठधानी है ।

प्रति इन्द्र प्रति पूर्णम्,
 शुद्धात्मा शुद्ध भावना ।
 शुद्धार्थं शुद्ध समय च,
 प्रति इन्द्र शुद्ध दृष्टिं ।

[छन्दोग]

इन्द्र सौत? निज चना ही तो
 मत्थ इन्द्र भक्त्यो स्वयमेव ।
 यही ऋषि है शुद्ध भावना,
 यही परम देवों का धर ।
 यही गद्य, शुचि शुद्ध अर्थ है
 यही समय निमल, पावन ।
 यही शुद्ध विद्रूप देव का,
 करो पितृया गनभाषा ।

दाताऽह दान शुद्ध च,
 पूजा आचरण मयुत ।
 शुद्धमम्यवत्पहृद्य यस्य,
 स्थिर शुद्ध भावना ।

[सत्तार्द्धम]

निम जन क इन्द्रादित्ये
 सम्यग्दर्शन १७ ३२७ ।
 अपने हा न इन्द्रादित्ये
 निसे १ सुते के ३ ३२, ७ ।
 आत्म इन्द्रादित्ये
 पर ज्ञान इन्द्रादित्ये
 परमेश्वर इन्द्रादित्ये

शुद्ध दृष्टी च दृष्टते,
 मार्घं ज्ञानमय ध्रुव ।
 शुद्धतत्त्व च आराध्य,
 वदना पूजा विधीयते ।

[अष्टादश]

विदाद ए ज्ञान-गुणो कं
 अनुभव मे होना तक्षीन ।
 यनी एक वदना है मरुचा,
 नदी वदना और प्रवीण ।
 शुद्ध आत्म ना निमल मन से
 करना मरुचा आराधन ।
 यही एक उस पूजा मरुची,
 यही साथ उस अभिराजन ।

मघस्य चतु सघस्य,
 मायना शुद्धात्मना ।
 ममपसारस्य शुद्धस्य,
 तिनोक्त सार्धं ध्रुवं ।

[उन्तीम]

मुनी आरिक्त आपर-दम्बति
 भी कयो ररे इतर चर्चा ?
 नितानन्द-रत होकर ये भी
 करें आत्म की ही शर्चा ।
 शुद्ध आत्मा ही यम जग में,
 मारभूत है हे भाई ।
 जिनमसु कहते, आत्मध्यान ही,
 एक मात्र है सत्यदाइ ।

माघ च महानत्मान
 दर्शनाया पदार्थकं ।
 चेतनाशुद्ध ध्रुव निरचय,
 उक्त च कैवलं चित्त ।

[तीम]

मम तत्त्व को दृश्यो चाह,
 छद्म द्रव्यों का छानो कुज ।
 नो पदार्थ, पञ्चास्तिकाय का
 चाह सतत विचरो पुन ।
 इन सब में पर नीव-तत्व ही
 मार पाओगे विज्ञानी ।
 आत्मतत्व ही सारभूत है
 कहती यह ही चिन्तयणी ।

मिथ्या तिक्र त्रतिय च,
 कुज्ञान त्रति तिक्रयं ।
 शुद्धमात्र शुद्ध समयं च,
 मार्घं भव्य लोक्य* ।

[एकतीस]

इशान मोह तीन हैं भव्यो,
 छोड़ो उनसे अपना नेह ।
 कुमति कुश्रुत, कुअरवि, कुज्ञानों,
 मे भी हीन करो हिय-गेह ।
 निर्मल भावोंसे तुम निशिदिन,
 धरो आत्म ता निश्चल ध्यान ।
 आत्म-ध्यान ही भव सागर के,
 तरने को है पौन महान ।

एतद् सम्यक्त्वपूज्यस्य,
 पूजा पूज्य समाचरत् ।
 मुक्तिश्चिरं पथं शुद्ध,
 व्यवहारनिश्चयशारदम् ।

[पत्नीस]

निर्मल हर मन, यथन काय की
 दीर्घ-एक-दिशि वैतरणी ।
 करो आत्म की पूजा विज्ञो,
 यही एक भय-जल-तरणी ।
 शुद्ध आत्मा का पूजन ही,
 पूजनीय है सुन्दरि ।
 युक्त नशों से रिद्ध यही है
 यही एक शिव-पथ भार्ग्वे ।

द्वितीय धारा



माला-रोहण

"श्रेष्ठिण सुनो वाम्बदिकु गूढ़ यह है,
 जो पूर्णतम है मध्यक्तर धारो ।
 केवल धरो पुण्यशाली सुवन ही,
 नृप ! धर सर मालिका यह सुम्बारी ।
 नो इ =, धरण्ड गधज, यहादि
 गना तरह धे तुमने बनाये ।
 धे स्वप्न मे भी कभी भूल राचन्,
 यह दिव्य माला नही दम्ब पाये ।"

महाला रोहण

ॐ शर वेदति शुद्धात्म तत्त्वं,
 प्रणमामि नित्य तत्त्वार्थ सार्थं ।
 ज्ञानं मय सम्यक्दर्शनोत्थं,
 सम्यक्स्वचरणं चैतन्यरूपं ।

[१३]

ओङ्कार रूपी देवान्त ही है,
 र तद निर्मल शुद्धात्मा वा ।
 ओङ्कार रत्नत्रय की मंजूषा,
 ओङ्कार ही द्वार परमात्मा का ।
 ओङ्कार ही सार तत्त्वार्थ का है,
 ओङ्कार चैतन्य प्रतिमाभिराग ।
 ओङ्कार में विश्व, ओङ्कार जगमे,
 ओङ्कार को नित्य मेरा प्रणम ।

नमामि भक्त श्रीवीरनारायं,
 न त्वत्पुष्टं त्वं व्यक्तं रूपं ।
 मालागुणं बोद्धुं तत्त्वप्ररोधं,
 नमाम्यहं केवलं नंतं गिद्धं ।

[६०]

वेङ्कटेश्वर चतुष्टय के निवेदन,
 निक न द्विग घटु कर्मारि वसते
 ऐसे जिनद्वय श्री धीर प्रभु को,
 मेरा युगल पाणि से हो नमस्ते ।
 मैं केवली, सिद्ध, परमेष्ठियों को,
 भी भक्ति से आज मस्तक नमस्ते ।
 जो सब तत्वों को है प्रकाशक,
 इस मालिनी के गुण आज गाता ।

ज्ञानाप्रमाणं त्वं ब्रह्मरूपं,
 निरंजनं चैतनलक्षणम् ।
 माये अनेत्वं जे ज्ञानरूपं,
 ते शुद्धं दृष्टी सम्यक्त्वं वीर्यं ।

[तीन]

इस ब्रह्मरूपी निज आत्मा का
 ज्ञानाप्रमाणं ब्रह्मरूपं वन है ।
 मल से विनिर्मुक्त, है यह ध्यानानंद,
 चैतन्य-सयुक्त कारणवरण है ।
 जो इस निरंजन शुद्धात्मा के,
 शंकादि वनकर बनते पुनारी ।
 वे ही सकल हैं, निज आत्मज्ञान में,

ममार दुःख्यु जे नर विरक्त ,
 ते समय शुद्ध जिन उक्त दृष्टं ।
 मिथ्यात्व मद मोह रागादि खटं
 ते शुद्ध इष्टी सत्यार्थं मार्थं ।

[चार]

श्री जैन बाणी में मुख्य कमल से,
 कहते गिरा सिद्ध परमात्मा है ।
 संसार दुःखों से जो परे है,
 भयो वही जीव शुद्धात्मा है ।
 मिथ्यात्व, मद मोह रागादिनों से
 निरत निचे है रिपु नाश भारी ।
 वे ही सुप्त हैं तथार्थं ज्ञाता,
 वे ही पुण्य हैं कर्मवत्प्रधारी ।

शून्यं त्रिप चित्त निरोध नेत्र,
 निन उक्त याणी हृदि चेतनेत्वं ।
 मिथ्याति दय गुरु घर्मदूर,
 शुद्ध स्वरूप सत्त्वार्थं सार्धं ।

• [पांच]

॥ धीर धनु के प्रदम्भजन का
 निनक इत्यन वन्द्य निदा है ।
 मिथ्याति दय गुरु अ योग जिनन
 ममदम्भ नानसु अय निना है ।
 मिथ्याति दय गुरु अर्ध से जो,
 रहने अग हू पर अतम ध्याती ।
 वे हा पुत्रा है उदात्त प्रविष्टि
 सम्पत्ता जो अतम ध्याती

जे मुक्ति सुखुं नर कोपि सार्ध,
 सम्यक्त्वं शुद्ध तै नर धरेत्वं ।
 रागादयो पुन्य पापाय ह्यं,
 यमात्मा स्वभावं नुव शुद्ध दृष्टं ।

[५६] °

मैं सिद्ध हूँ, मुक्तिरमणी चिह्नरा,
 दे मोक्ष मेरी यही चारु काया ।
 मद मोह महा दुःख रागादिका की
 पङ्क्ति न मुझ पर कभी भूल द्याया ।
 सम्यक्त्वं से पूरा जिनके हृदय हैं,
 जो चाहते मोक्ष किस रोच पाँ ।
 यं स्वायलम्बी इसी भाति अपने,
 हृदयत्वं परमात्मा को रिखवें ।

भी केरतंज्ञान विलीयतत्त्व,
 शुद्ध प्रसार्त शुद्धात्म उत्तम ।
 सम्यक्त्व ज्ञानं चर नत शौर्य,
 कृत्यार्थ सार्थ त्वं दर्शनेत्वं ।

[साठ]

सागरसी में विम हत्व का रे ।
 दिग्गज सप्त है प्रक्षिप्यद प्यार ।
 निसङ्गे वदन से प्रविष्ट विजयता-
 रक्षता प्रम पु अ शुचि, शुद्ध चार ।
 सम्यक्त्व ही पूर्ण प्रतिमूर्ति रे जो,
 है जो अनूज धान-रु-राशी ।
 वरुण व मार वस धातया को,
 देखे, दिजेछे, मोक्षाभिलषी !

मम्यत्तु शुद्ध हृदयं ममस्तु,
 तस्य गुणमाला गुथतम्य धीर्यं ।
 दवाधिदेव गुरु ग्रन्थ मुक्त,
 धर्म अहिंसा धर्मा उत्तमध्व्यं ।

[आठ]

मम्यत्तु भी चान् चन्द्रारली से,
 मयके हृदय हार हैं जगमगाते ।
 पुण्यात्मा, भीषेर चीय ही पर,
 उसके गुणों को कर व्यक्त पाते ।
 निरुत्त ही देव हूँ क्षाणियों के,
 गुरु ग्रन्थ-निर्मुक्त, कल्याणकारी ।
 हैं धर्म परमोच्च उत्तम अहिंसा
 निममे विहंसनी नामा शक्तिधारी ।

तत्त्वार्थं साधं त्वं दशनेत्वं,
 मल विमुक्तं सम्यक्त्वं शुद्धं ।
 ज्ञान गुण चरणस्य शुद्धस्य धीर्यं,
 नमामि नित्यं शुद्धात्म तत्त्वं ।

[नौ]

तत्त्वार्थ के सार को तुम मिलोको,
 जो शुद्ध सम्यक्त्व का ध्यु¹प्याला ।
 परिपूर्ण जो शुद्धतम ज्ञान से है,
 जो है अतुल शक्ति चारित्र बाला ।
 यह सार प्यारा शुद्धात्मा है,
 धिरसुचमदत्तना अनुपम सु साधन ।
 ऐसे घमोलक विज्ञानघन का,
 मैं नित्य करता सद्ब्रह्मभिवादन ।

जे सप्त तत्त्व पट दर्न युक्त ,
 पदार्थ काया गुण वेनेत्य ।
 निद्रा प्रसाद्य तत्तान वेद,
 श्रुत देव देव शुद्धात्म तत्त्व ।

[६१]

जो सप्त तत्वों को व्यक्त करता,
 पट द्रव्य जिसको द्रव्यामलक है ।
 द्वाकाशिराया और गौ पदार्थ,
 जिसमें निरंतर दत्ते मूलक हैं ।
 चैतन्यता से है जो विभूयित,
 विभुयन-शाली दो जो जगमगाता ।
 श्रुत-शाग रूरी सप्त आत्म ने ही,
 रत रह, करो ध्यात्म-वक्ष्याण धर्मा

दर्वं गुरु शालं गुणान् नेत्रं,
 सिद्धं गुणं सोलाकारेण्य ।
 धर्मं गुणं दर्शनं ज्ञानं चरणं,
 पालायं गुणं गुणसत्स्वरूपं ।

[ग्याह]

मत्तं देव रत्नं च सुन्दरं च
 भद्रा क्रीडति मन्त्रेण ।
 सुखिण्य मित्रेण च सुखेण
 याते परम सुखेण ।
 शुचि, शुद्ध चित्तवृत्तये
 प्रपन्नं समोदयं च सुखे,
 शिवं पदं चित्तवृत्तये
 चित्तवृत्तये चित्तवृत्तये ।

षडमास ग्यास तत्पान पैप,
 ब्रह्मान शील ऋष दान चिर्त्त ।
 सम्पदत्र शुद्ध धानं चरित्रं,
 सुदर्शन शुद्ध मल विमुक्त ।

[शारद]

एकादश स्थान में आचरण कर,
 कमारि पर जय करो प्राप्त भारी ।
 पचाणुप्रत पाल भव भव सुधारो,
 षडमा हो तप तपो तापहारी ।
 दो दान सत्पत्र-दल को चतुर्मासि,
 निज आत्म की ज्योतिको जगमगाओ
 पावन करो शील-सुर शारि से मोह,
 सम्पदत्र निधि प्राप्त कर मोक्ष पाओ

मूल गुण पालत जीव शुद्ध ,
 शुद्ध मय निर्मल धारयेत् ।
 ज्ञानं मय शुद्ध परत चित्त,
 ते शुद्ध दृष्टी शुद्धात्मतत्पर्यं ।

[तेगद]

धनु मूलगुण को पालन किये से,
 रे । जीव होता है शुद्ध, सुन्दर ।
 पुरुषार्थियों को इससे उचित है,
 धारण करें वे यह अत-पुरन्दर ।
 जो ज्ञानसागर इस आचरण से,
 यह देय-दुर्लभ जीवन सचाते ।
 वे भीर नर ही हैं शुद्ध दृष्टी,
 शुद्धात्म के तत्व वे ही कहाते ।

शक्राद्य दोष मन् मान मुक्त,
 मूढ त्रिय मिथ्या माया न दृष्ट ।
 अनाय पद्मर्म मल पचवीस,
 त्यक्तस्य शानी मल र्ममुक्त ।

[चौदह]

शक्रादि वस्तु दोष, मायादि मद को,
 जिसने इन्द्र म पुत्र धत नहीं है ।
 त्रय मूढ़ता, पद आणायतन की,
 जिस पर न पड़ती छाया कभी है ।
 उपरोक्त पचवीस मल वैरियों पर,
 जिसने विजय प्राप्त की भय भारी ।
 वह कर्म के पाश से दूटता है,
 जाता वही मुक्ति-रमणा-निहारी ।

शुद्ध प्रकाश शुद्धात्मा,
 समस्त सपत्न विस्त्राहक ।
 रत्नप्रयालकृत सन्निभ,
 तत्त्वार्थमार्थ बहुमक्तिपूर्ण ।

[पं०१]

शुद्धात्मा-अथ एवम जीवो,
 है शुद्ध, निर्द्वन्द्व विभक्त प्रकारा
 मरन्त्य एव प्र दोष उममें,
 करता नान्य ही है तियास ।
 शुद्धात्मा है शुद्ध स्वरूप,
 है रत्नप्रय, श्रेया गुणारी ।
 तत्त्वार्थ मूर्ति, सम यही ।
 मन्वो वने, रहे तुम्

जे धर्म लीना गुण चैतनेत्तं,
 ते दु ए हीना निनशुद्धदृष्टी ।
 संप्रोय तत्त्व सोड ज्ञान रूपं,
 प्रकृति मोक्ष एणमेव एत्थं ।

[मोलह]

शुद्धात्मा के चैतन्य गुण में,
 जो नर निरंतर लगन न रहते ।
 वे शिक्षा हा हैं, निन शुद्ध दृष्टी,
 ससार दुख धार में वे न रहते ।
 जीवादि तत्त्वों का ज्ञान करके,
 होते स्वरूपस्थ वे आत्म ध्यानी ।
 कमारि दल या विध्वंस करके
 वरत वही वे शिवा सी भयानी

जे शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व शुद्धं,
 माला गुण्यं कंठ हृदय अरुलित ।
 तत्त्वार्थं सार्धं च करोति नेत्रं,
 ससार मुक्त शिष्य मौल्य दीर्यं ।

[सत्रह]

जो शुद्ध दृष्टी शुद्धात्म-प्रेमी,
 गित पालते हैं सम्यक्त्व पानन ।
 अपने हृदयस्थल पर धारते हैं,
 जो बह गुणों की माला मुदावन ।
 वे अन्य जन ही पाते निरंतर,
 तत्त्वार्थ के सार का चारु प्याला ।
 संसार-सागर से पार होकर,
 पाते वही जीव चिर सौख्य-शाखा ।

ज्ञान गुण माल सुनिर्मलेत्व,
 सन्नेप गुथित तुव गुण जनन्त ।
 रत्नत्रियालकृत सस्वरूप,
 तत्त्वार्थ सार्धं कथित जिनेन्द्र ।

[अठारह]

शुद्धात्मा की गुणमालिका में
 बाणी अगोचर है पुष्प भाई
 सन्नेप मे ही पर पुष्प चुन चुन
 यह दिव्य माला मैंने बनाई
 आगम, पुराणा से तुम सुनोगे
 वस एक ही वाक्य परमात्मा का
 रत्नत्रयाच्छन्न है भव्य जीयो
 शशि सा मुलक्षण शुद्धात्मा का

श्रेणीष पृच्छति श्री वीरनाथ,
 मान्नाथिय मागत नेहचक्र ।
 धरणेन्द्र इन्द्र गन्धर्व जक्ष,
 नरनाह चक्र विद्या धरेत्त्व ।

[उद्गीत]

श्री वीर प्रभु से श्रेणिय नृपति ने,
 - पूछा सभा मे मन्त्र नवाकर ।
 इम मालिका को त्रिमुवन तलीपर,
 किसने तिलो का कहो तो गुणागर ?
 क्या इन्द्र, धरणेन्द्र, गन्धर्व ने भी,
 देखी कभी नाथ यह दिव्यमाला ?
 या यक्ष, चक्रेश, विद्याधरों ने,
 पाया कभी नाथ यह मुक्ति प्यासा ?

किं दत्तं गहन बहुये अनन्तं,
 किं घन अनन्तं बहुमेव पृक्त ।
 किं स्पक्तं राज्यं घननासलेत्वं,
 किं तत्त्वं घेत्यं बहुये अनन्तं ।

[पीस]

जिसके भयन में हीरे जवाहिर,
 या द्रव्य की लाग रही राशि भारी ।
 ऐसे कुचेरों ने भी प्रभो क्या
 देखी कभी माल यह सौख्यकारी ।
 या राज्य को त्याग लोगी घने जो,
 घनने बिलोकी यह माल स्वामी,
 या सप्त तत्त्वों के पदियों ने,
 देखी गुणावधि यह मोक्षगामी ?

श्री वीरनाथ उक्तं च शुद्ध,
 श्रुणु श्रेय राजा माला गुणार्थं ।
 किं रत्न किं धर्म किं राजनार्थं,
 किं तत्र वेद्य नमि माला दृष्ट ।

[इक्कीस]

बोलते त्रिशूल श्री सुग्न कमल से,
 'श्रेणिक सुनो मालिका की कहानी ।
 इस 'नाम-शुणु की सुमनामलीके,
 दर्शन सहज मन हीं प्राप्त शान्ती ।
 ता ही कभी रत्नधर धारियों ने,
 श्रेणिक सुनो मालिका यह निहारी ।
 ना मालिका को बनते मिलोका,
 तो मात्र ये तत्र के धानधारी ।'"

किं रत्न कायं बहुविद्धि अगत,
 किं अर्थं जयं नहि कोपि कायं ।
 किं रात्र चक्रं किं काम रूप,
 किं तत्त्व वेत्स्यं विन शुद्ध दृष्टि ।

[षाईस]

“इस माल के दर्शनों में न तो भूष,
 रत्नादि पत्थर ही काम धारें ।
 ना सार्वभौमा के रात्र या धन,
 ही इस गुणायलि को देव पात्र ।
 ना तो इसे देव वत्तक पाये,
 ना कामदेवा से दृग-सुधारी ।
 दशन वही कर सने मालिका का,
 ये जो सुते शुद्धतम दृष्टि धारी ।”

ज इन्द्र धरणेन्द्र गधर्व यक्ष,
 नाना प्रकार बहुभिह अनत ।
 तेभत प्रकार नहु मेय कृत्वं,
 माला न दृष्ट कथित जिनेन्द्र ।

[तेईस]

“श्रेणिक। सुनो वास्तविक गूँ यहै,
 जो पूणउम है सम्यकर घारी ।
 केवल वही पुण्यशाली सुपन ही,
 नृप । धर सके मालिका यह सुपारी ।
 जो इ द्र, धरणेन्द्र, गधर्व, यक्षादि,
 नाना तरह के तुमने घताये ।
 वे स्वप्न मे भी कभी भूल रावन् ।
 यह दिव्य माला नहीं देल पाये ।”

जे शुद्ध दृष्टी मर्म्यवत्त युक्त,
 तिन उक्त सत्य तु तत्तार्थे मार्धे ।
 आशा भय लोभ स्नेह त्यक्त,
 ते सार एष्ट दृष्टय ऋठ हन्ति ।

[चौबीस]

जो स्वाहाइश सम्यक्त मर्म्य,
 शुचि, शुद्धदृष्टी, निज आत्मध्यानी ।
 तत्तार्थे सार को ज्ञाते नित्य,
 ध्याते पनि सतनी जैत वाणी ।
 आशा भय स्नेह औ लोभ से जो,
 विलकुज अछूत हैं स्वात्मचारी ।
 वे हो हृदय ऋठ में जिन पदितने,
 हे आत्म-गुणमाल यह मौख्यकारी ।

सम्यक्त्वं शुद्धं मिथ्या निरक्त,
 राज भय गाख जैनि त्यक्त ।
 ते गाल दृष्ट हृदय कठ रुलित,
 मुक्तस्य गामी चिनदेव रुधित ।

[छन्दोम]

“मिथ्यात्वं को सर्वथा त्याग कर
 नर हो चुके हैं सम्यक्त्वं धारी
 निरके हृदय तान, भय से रुधित
 जिनने किये नष्ट गद अष्ट भारी
 इनकी हृदय सेज ही भय जीवो
 इस मालिका की श्रीदास्यली हैं
 चिनदेव कहते इनके रमण को
 ही पद सुखी शिवनगर की गनी हैं।

ज दर्शन गान चारित्र शुद्धं,
 मिथ्यात्व रागादि असत्य त्यक्तं ।
 त माल हृष्ट हृन्मयकठ रुलित,
 सम्यपत्त्व शुद्ध कर्म विमुक्त ।

[मर्णाईम]

शुचि, शुद्ध दर्शन, ज्ञानाचरण से,
 पिन्ने इदय में मर्णाई दिवाली ।
 मिथ्यात्व, मद, भूठ रागादि के हेतु,
 जिन्ने न उर म कहीं ठौर खाली ।
 उनके इदय कंठ पर ही निरतर,
 ये माग मनहर लटकती रहा हैं ।
 ये ही गुणन हैं जिन्ने शुद्ध नष्टी,
 रिदु कर्म से मुक्ति पावे यही हैं ।

पदस्य विण्डस्य रूपस्य चित्त,
 रूपा अतीत जे ध्यान युक्त ।
 आर्त रौद्र मद्र मान त्यक्त,
 ते माल छए हृदय फठ कलित ।

[अष्टाईम]

पादस्य, विण्डस्य, रूपस्य, निर्मूर्त,
 इन ध्याल-हु जों के जो विहारी ।
 मद्र मान से शत्रुओं के गर्दों पर,
 चित्तने विजय प्राप्त की भव्य भारी ।
 जिनके न तो रौद्र ही पास जात,
 जिनसे न ध्यानार्त की गंध आती ।
 ऐसे सुवन पु गवों के हृदय ही,
 यह आत्मगुण मालिका है सजाती

शाजा सुवेद उपशम धरेत्त्व,
 चापिकं शुद्ध निन उक्त सार्धे।
 मिध्या त्रिभेद मल राग एतं,
 ते माल दृष्ट हृदय रुठ रुलित।

[उनतीस]

जो अष्टम नर बरु व उपशम,
 सम्यगत्य के है शुद्ध घारी ।
 मिध्यात्व से होत है त्रिभेदो,
 सम्यगत्य चापिकं एत मारी ।
 मद राग से अस्त सर्वथा है,
 जो जानते, निरुत्त एव पावन ।
 ये ही हृदय पर दखने हैं
 नित रागल, अस्त एव सुशान।

जे चेतना लक्षणो चेतनेत्वं,
 अचेत विनासी असत्य च त्यक्तं ।
 निन उक्त सत्य मु त्त्वं प्रकाश,
 ते माल एह हृदय कठ रुलित ।

[छीस]

चेतन्य—लक्षण—मय आत्मा के,
 है जो गिराबुल, निरचल पुष्पारी ।
 अचूत, अचेतन, विनाशीक, पर मैं,
 जिनको नहीं रच समता दुलारी ।
 जिनके हृदय में जिन उक्त तत्त्वों,
 की नित्य जगाती संतप्त ज्वाला ।
 उनके हृदय-कठ को ही जगावी,
 श्रेणिक सुनो । यह अध्यात्म-माझा ।

शुद्ध बुद्धस्य गुण सस्य रूप,
 गादि दोष मल पु ज त्यक्त ।
 म प्रमाद्य मुक्ति प्रवेश,
 माल दृष्ट हृदय कठ रुलित ।

[इक्तीम]

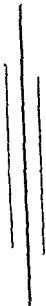
जिन शुद्ध जीवा को दिग्य चुकी है,
 निज आत्मश्री माधुरी मूर्ति घाकी ।
 तिनके दृगों के निरद भूलती है,
 प्रतिपल मुमुक्षुमुक्ति की दिव्य माँकी
 जा रागद्वेषादि मल से परे है,
 जो धम की कान्ति को नगमगाते ।
 इस मालिका को षही शुद्ध दृष्टी,
 अपने हृदय पर षधी देख पाते ।

वे सिद्ध न तं मुक्ति प्रवेरु,
 शुद्ध स्वरूप गुण मान ग्रहित ।
 जे कवि मध्याम मम्यक्षर शुद्ध,
 ते बात मोक्ष कथितं त्रिनेत्रैः ।

[पत्तीम]

अथ तच्च गये विश्व से जीव जितने,
 घोला पहिन मुक्ति का सिद्ध शाला ।
 अपने हृदय पर सना ले गये हैं,
 वे सब

तृतीय धारा



कमल-कत्तीरि

आत्म तत्व ही इम त्रिभुवन में,
सच्चा रत्नत्रय है ।
सब देवों का देव वही,
परमेस्वर एक अजय है ।
आत्म तत्व ही सब गुरुओं का,
श्रेष्ठ परम गुरु शानी ।
सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म उस,
आत्म तत्व सुखदानी ।

कमल कर्त्तरीकी

तत्त्वं च परम तत्त्वं परमप्या,
 परम भाव दरमोए ।
 परम निन परमिस्टी,
 नमामिह परम देवदेवस्य ।

[एक]

सर्वा में जो तत्त्व परम है,
 भाव परम दरशाते ।
 परम जितेन्द्रिय परमेष्टी जो,
 परमेश्वर पह्लाते ।
 सय देवों में देव परम जो,
 धीतरुग, सुख-साधन ।
 ऐसे श्री अरहन्त प्रभू को,

जिन वपन सदहन,
 कमलामिरि कमल नार उवरन ।
 आर्जन भार गजुत्त,
 ईर्ज स्वभार मुक्ति गमन च ।

[दो]

पतितोद्धारक चिनयाणी के
 होते जो श्रद्धानी ।
 आत्म-कमल से प्रगट, एनके,
 ही भर—भार—भरानी ।
 आत्म बोध का होना ही,
 आशुलता जाय है ।
 आशुनता का जाना ही यस,
 शिव सुख को पाना है ।

अन्मोय न्यान सहार,
 रयन रयन स्वरूपममल न्यानस्य।
 ममल ममल सहार,
 न्यान अन्मोय सिद्धि संपत्ति ।

[तीन]

ज्ञान-स्वभाव है, स्वत्य सनातन,
 आत्म तत्व का प्यारा ।
 रत्नत्रय से है प्रदीप्त घड,
 रत्न प्रत्यस्तम न्यारा ।
 कर्मा से निर्मुक्त, नदा यह,
 शुचि स्वभाव का धारी ।
 जो उसमे निव रत रहते थे,
 पाते शिव सुखकारी ।

जि न य ति मिथ्या भाव,
 अनृत असत्य पर्नाय गलिय च ।
 गलिय कुन्यान सुभाय,
 पिलय कम्मान तिविह जोएन ।

[चार]

आत्म मनन से मिथ्यादर्शन,
 ई धन सा जल जाता ।
 अनृत, अचेतन, असत् पदों में,
 मोह न फिर रह पाता ।
 'सोऽहं' को ध्वनि क्षय कर देती
 कुहानों की टोली ।
 आत्म चिन्तन रचदेता है,
 अष्ट मलों की होली ।

नन्द आनन्द रूप,
 धैर्यन आनन्द पर्जाय गलिय च ।
 न्यानेन न्यान अन्मोय,
 अन्मोय न्यान कम्म पिपन च ।

[पाच]

परम ब्रह्म में जय रत होता,
 मन—मधुकर—मदवाला ।
 सत् चित्त, आनंद से भर उठता,
 तब अंतर का प्याला ।
 क्षाती चेतन, शान-कुण्ड मे,
 खाता फिर फिर गोठे ।
 मलिन भाव और सफल कर्म तब
 पल पल में छय होते ।

काम्म महाव पिपन,
 उत्पन्न पिपिय दिष्टि सद्भाव ।
 चैयन रु सजुत्त,
 गल्लियं विलयति कम्म वधान ।

[छद्]

प्रमा का नश्वर स्वभाव है,
 प्रव वे गिर जाते हैं ।
 सायिक-सम्यग्दर्शन-सा प्रव,
 रत्न मनुज पाते हैं ।
 सायिक सम्यग्दृष्टी नित प्रति,
 आत्म—ध्यान धरता है ।
 जन्म जन्म के कर्मा को यह,
 क्षण में क्षय करता है ।

मन सुमात्र संपिपन,
 तसारे सरनि मात्र पिपन च ।
 न्यान चलेन विसुद्ध,
 अन्मोयं ममल मुक्ति गमनं च ।

[सात]

इम चचरा मन का स्वभाव है
 नाशवान प्रिय भाई ।
 नश्यत है सिध्यादर्शन की,
 भी प्रकृति दुखदाई ।
 आत्म ज्ञान ही सरल शुद्ध,
 भावों को उपजाता है ।
 सरल शुद्ध भावों के यत्न से,
 ही नर शिष पाती है ।

वैराग्य विविद्धि उन,
 जनरजन रागभाव गलिय च ।
 कलरजन दोष विमुक्,
 मनरजन गारवेन विक्त च ।

[श्राठ]

भय, तन, भोगों से निस्पृह बन
 जाता आत्म—पुनारी ।
 जन—रजन गारव न उसे
 रह, देता, दुष दुस्कारी ।
 तन—रजन के भय से घद,
 छुटकारा पा जाता है ।
 मन—रजन गारव भी उसके,
 पास न फिर आता है ।

दर्शन मोहघ विमुक्त,
 राग दोष च विषय गलिय च ।
 ममल सुमाउ उरस,
 नन्त चतुस्तये दिष्टि संदर्भ ।

[नौ]

दर्शन-मोह से हो जाना है,
 मुक्त आत्म का स्वामी ।
 रागद्वेष से उसकी ममता,
 हट जाती दुःखदानी ।
 घट में उसके आत्म-भाय फल,
 हो जाना उजियाला ।
 नन्त चतुस्तये की निरुद्धे निरुद्ध,
 अगती गती

तिअर्थ सुद्ध दिष्ट,
 पंचार्थ पच न्यान परमेस्टी ।
 पंचाचार सुचरन,
 सम्मर्त सुद्ध न्यान आचरन ।

[दस]

सम्यग्दृष्टी नितप्रति निर्मल,
 रत्नत्रय को भ्याता ।
 पंच ज्ञान, पंचार्थ, पच प्रभु,
 का होता बह ज्ञाता ।
 पंचाचारों का नितप्रति ही,
 वह पालन करता है ।
 सब मिथ्या उपग्रहार त्याग वह
 आत्म-ध्यान धरता है ।

दर्शन न्यान सुचरन,
 देव च परम देव सुद च ।
 गुरु च परम गुरु,
 धर्म च परम धर्म सभार ।

[ग्यारह]

आत्म तत्त्व ही इस त्रिभुवन में,
 सच्चा रत्नत्रय है ।
 सब देवों का देव वही,
 परमेश्वर एक अत्रय है ।
 आत्म तत्त्व ही सब गुरुओं में,
 श्रेष्ठ परम गुरु ज्ञानी ।
 सब धर्मा में श्रेष्ठ धर्म वस,
 आत्म तन्त्र सुवदानी ।

जिन पद्य परम चिनय,
 न्यान परामि अक्षर जोय ।
 न्यानेन न्याय रिधि,
 ममत्र सुभाषेन मिद्धि ममत्त ।

[चारह]

आत्म तत्र ही मन्थरत्वी दा,
 परमेष्ठी पद प्यारा ।
 आत्म तत्र ही उमरा केवत-
 ज्ञान अलौकिक त्यात ।
 आत्म तत्र के अनुभव से ही,
 आत्म ज्ञान बढ़ता है ।
 आत्म ज्ञान के बल पर ही गर,
 शिव पद पर चढ़ता है ।

व दानन्द चित्तवन,
 यनश्चानन्द सदाश्चानन्दं ।
 ममल पयडि पियन,
 मल महापेन अन्मोय मजुत्त ।

[तेरह]

मन चित्त आनन्द चेतन में तुम,
 रमण करो प्रिय भाई ।
 हमसे तुमको होगा अनुभव,
 एक अकथ सुखदाई ।
 मुरझा जाती है पापों की,
 आत्म मनन से गाथा ।
 कर्म प्रकृतियों की हो जाती,
 हिम-सी टपटी आला ।

अप्या पर पिच्छतो,
 पर पर्जाय सत्य मुक्क च ।
 न्पाय सहाय सुद्ध,
 सुद्ध चरनस्य अन्मोय सजुत्त ।

[चौदह]

'आत्म दृश्य का पर स्वभाव है,
 पर दृश्यों का पर है ।'
 इस मन में बहता जग ऐसा,
 ज्ञान-मयी निम्नर है ।
 पर परणतिर्घ, शून्ये तब सम
 सदसा डह जाती है ।
 निम्न स्वरूप की ही वन फिर फिर,
 मग्नकी दिखलाती है ।

अयम्भ न चरन्त,
 विक्रहा विनस्य विषय मुक् च ।
 न्यान सुहाय सु समय,
 समय सहकार ममल अन्मोय ।

[पंद्रह]

परमब्रह्म में जय चंचल मन
 निश्चल हो रम जाता ।
 तत्र न बहा पर अन्य, किंतु,
 निज आत्म स्वरूप दिखता ।
 चारों विक्रया, व्यपन, विषय
 उस क्षण छुप से जाते हैं ।
 परमब्रह्म में रह मन दोश,
 मल सब धुल जाते हैं ।

जिन वचन च सहाय,
 जिनय मिथ्यात कपाय वम्भानं ।
 अ प्या मु द्द प्या न,
 परमप्या ममल दर्शण मुद ।

[मोलह]

जिन मुख सरसीरह की है यह,
 ऐसी प्रिय पिताशायी ।
 मल, मिथ्यात्व, कपार्ये मयको,
 पल मे हरती ज्ञानी ।
 आत्म तत्र ही शुद्ध तरंग है,
 जिन प्रभु कहते भाई ।
 आत्म-मुहुर में ही वस तुमको,
 दोगे प्रभु दिखलाई ।

निज दिष्टि इष्टि ससुद्ध,
 इष्टं मनोप दिगत अनिष्ट ।
 इष्ट च इष्ट रूप,
 ममल महावेन ग्रन्म संपिपन ।

[सप्तद]

।

जिनराणां श्री धद्धा हिय मं,
 शुचि पावनता क्वाती ।
 दिग्ध धनिष्टों से, इष्टों से,
 वह संयोग कराती ।
 त्रिभुरन म मयसे गृदुहम वग
 आत्म-मनन की प्याली ।
 आत्म-मनन से ही दूटेगी,
 कर्म-कमठ की जाती ।

अन्यान नहि दिष्ट,
 न्यान महावेन अन्मोय ममल च ।
 न्यानतर न दिष्ट,
 पर पर्जाय दिष्टि अतर महमा ।

[अठारह]

सायिक सम्यग्दृष्टी में अ
 ग्दी रहता है
 ज्ञान-तरंगों पर चढ़, नित
 शिव-सुख में बहता है
 आत्म ज्ञान में अंतर ल
 नेक नही दिखत
 भेद भाव, पर परणतियों
 पर सहसा आ जात

अप्या अप्य सहानं,
 अप्य सुदृष्य ममल परमप्यो ।
 परम सरूप रूप,
 ह्य विगत च ममल न्यान च ।

[उन्नीस]

आत्म द्रव्य ही है परमोत्तम,
 शुद्ध स्वरूप हमारा ।
 वह ही है शुद्धात्म यही है,
 परमब्रह्म प्रभु प्यारा ।
 त्रिभुवन में चेतन-सा उत्तम,
 रूप न और कहीं है ।
 है यह ज्ञानाकार, अत्यन्तम
 इच्छा रूप नहीं है ।

ममल ममल रास्व,
 न्यान विन्यान न्यान गद्वारं ।
 विन उरं जिन वयन,
 विग गह्वारेन मुक्ति गमनं च ।

[पीठ]

जिगह अमृत-वधन मोक्ष से,
 मृदु फल के दायक है ।
 हस्तमलक्ष्मण ने त्रिभुवन के,
 घर घर के साधिक हैं ।
 ऐसे विन प्रभु भी यद कहते,
 चोत अधिरारी है ।
 आत्म-ज्ञान ही पंच ज्ञान के,
 पथ में सहकारी है ।

एकांत विप्रिय न दिङ्,
मध्यस्थ नमल सुद्ध सन्माय ।
सुद्ध सदाय उच्च,
नमल दिङ् च ऋम्म पिपन च ।

[५६]

त्र क्लिष्ट जीरा,
 न्मोय सहकार दुग्ण गमन ।
 विरोह सभारं,
 मारे सरनि दुपनीयम्मि ।

[तेईस]

जो नर संसारी जीवों का,
 पीड़ा पहुँचाते हैं ।
 रा पर से दुःख पहुँचा उनको,
 जो अति सुख पाते हैं ।
 ऐसे दुष्टों का होता बस,
 नर-नरक म डेर ।
 विपत्तियों का भयभीत बस ।

न्यान सदाव मु समय,
अभोय ममल न्यान तहकार ।
न्यान न्यान तस्य,
ममल अभोय सिद्धि सम्पत्त ।

[चौबीस]

इष्टं च परम इष्ट,
 इष्ट श्रमोय विगत श्रान्ति ।
 पर पर्जाय विलय,
 न्यात सहावेन रुम्भजिनिय च ।

[पथीग]

त्रिभुवन न सर्वाङ्ग सत्,
 इत्त चेज्ज का पद है ।
 गित सरुन न ररना ही वत्,
 अहित शिवा सुह-द है ।
 आत्म मान स फो वा सर,
 वेदी च , अर है ।
 इमने एन्मुत्र ग र्याये,
 दास नही एने है ।

जिन वयन मुद मुद,
 अन्मोय ममल मुद सहकार ।
 ममल ममल सरुव,
 ज रयन रयन सरुव समिलिय ।

[छन्दोम]

श्री जिनशणी निश्चयनय क्य,
 प्रिय सन्देश सुनाती ।
 त्रिभुवनतल मे उछसी पावन,
 वस्तु न और लखाती ।
 ज्ञान सिन्धु आत्म का भव्यो ।
 रूप परम पावन है ।
 आत्म मनन से ही मिलता वस्त,
 रत्नत्रय सा धन है ।

वैष्टे च गुण उववन्न ,

वैष्टे सहकार कम्म सपिपन ।

वैष्टे च इष्ट कमल,

कमलमिरि कमल भाव उववन्न ।

[सत्ताईम]

अगता हे शुद्धोपयोग गुण,
आत्म - मनन से भाइ ।
जिसके पल से गल जाते सब,
कम महा दुखदाई ।
कर्म पाट, अरहन्व महापद
आत्म—कमल पाठा हे ।
और यही निच-रूप रमण फिर,
शिबपुर निष्ठाशा हे ।

जिन यमन सहार,
 मिथ्या बुन्यान सहय तिक्त च ।
 विगत विषय कथाय,
 न्यान अन्मोय कम्म गलिय च ।

[अङ्क ६४]

भव-सागर अति दुर्गम, दुः
 खाह न इमही प्राणी ।
 इमही तरन म सगर्ध सर,
 एव महा जिन—वाणी ।
 जिन—वाणी कुशान, कपार्य,
 शर्य, विषय चय करती ।
 निश्चयनय का गीत सुना यद,
 सर कर्मा को हरता ।

मल कमल सहारं,
 इरुमल विरुर्ध ममल आनन् ।
 र्मन न्यान सहारं,
 एन अन्मोय इमा मपिपा ।

[उन्तीम]

आत्म-बाल अरुह-रूप मं,
 विम घण मुमकता है ।
 इस नान ही, पट गुण विरु-रुल
 उसको विरुसाता है ।
 इशा-ज्ञान मरोर म तन,
 आरम, रमण करता है ।
 और अपात्रिय कम गरा, वह
 शिव म पण धरता है ।

सत्तार सरनि नद्दु दिदु,
 नद्दु दिदु सुमल पत्रिय सभाय ।
 न्यान कमल सहार,
 न्यान विन्यान ममल अन्मोय ।

[तीम]

सिद्ध न संसारी जीवों—से
 भव भव गोते राधे ।
 अशुचि मलिन परिणतिये उनके,
 पास न जाने पाये ।
 उनके घर में कमल सहस्र दस,
 केवल — ज्ञान दिईसता ।
 पुद्ध ज्ञान, सत् चित् सुख ही वम
 उनके दिव्य मे पसता ।

तिन उच सदहन,
 अप्या परमप्य सुद्ध ममल च ।
 प र म प्या उ व ल द्ध,
 घम्म सुभावेन रुम्म विलयन्ती ।

[इक्कीस]

'विश्वो ! अपना आत्म दूध ही,
 है जग का परमेश्वर ।
 बरसाते इस वाक्प-सुधा को,
 तारण तरण जिनेश्वर ।'
 जो जन, तिन-बच पर श्रुद्धा कर,
 बनवा आत्म—पुजारी ।
 रुम का, भयसागर तर बह,
 बनवा मोक्ष—विहारी ।

निन त्पि उत सुद',
 जिनति रम्मान विविह जोएन ।
 न्यान जन्मोय ममल,
 ममल सरूप च मुक्ति ममन च ।

[वृत्तीग]

चैसा निन ने वृत्त, चैसा
 घचन—अमिय दरसाया ।
 वैसे ही शुद्धात्म तत्त्व च,
 मन रूप दिग्गयाया ।
 त्रिविधि योग से मत्तन करेंगे,
 जो आत्म—आराधन ।
 कम जीत, वे ज्ञानानन्द हो,
 पायेंगे शिव—पावन ।

प्रार्थना-“आत्मराम”

विमलमय आत्मराम, अरु अमर है आत्मराम ।

पतिन पावन आत्मराम ॥

बुधो नरे प्रेमसे, आत्मराम जय आत्मराम । टेक

यह एक अनेकों नाम, मन मंदिर न है विराम ।

सिद्ध शिव ब्रह्म है नाम, इसको कहते प्रमाभिराम ॥

मन रूप का भेद मूल ना, मग मर्यादा आत्मराम ।

मर्मल गुड मुद्धि से नेत्रो, पा चारोने आत्मराम ॥१॥

बोलो०

मय मय है चारु धाम, इसमे सुनित आठों वाम ।

ब्रह्म विष्णु है शंकर नाम, कोइ कहता रामेशाम ॥

सगती के तन उन म देगो, गप रहा है आत्मराम ।

पानी परन अग्नि म, भलकरहा है आत्मराम ॥२॥

बोलो०

पाणि मं गदि गत राम, त्रि आग मं जलता राम ।
 तदी वापु म उड्डा राम, नदी भूय से गरवा राम ॥
 ध्रुव है नित्य अटल दुनिया म, शाश्वत रहता आत्मराम ।
 जय - निर्गुण जय गुण, मागर, अनय अनामय आत्मराम ॥

बोलो० ॥३॥

इसम सग है आराम, मरत नहीं होता है दाम ।
 भज लो इसका प्राण शाम, जिससे हो चाये क्लम ॥
 अपने क्षी मं दृढ़ निकालो, कम करो निःप्रति निष्काम ।
 ध्यान लगाकर अनुभव करलो, पा जाओगे आत्मराम ॥४॥

बोलो०

महावीर की यह जिनशाणा, वेद बुद्ध न इसे बखानी ।
 सब धर्मा ने निचय जानी, संता ने इसको पहिचानी ॥
 अपने पर का भेद भूल ना, मिल जाओगे आत्मराम ।
 आशा भय स्नेह छोड़ दे, मलक उठगे आत्मराम ॥५॥

बोलो०

भीरा की यह श्याम लगन म, द्रोपदि की यह चीर हरन मं ।
 सीता की यह अग्नि तपन मं, राजुल ने पाया गिरिवन म ॥
 मैनासु दुरि न पति सेवा म ही, पाया अषट आत्मराम ।
 संवा ये पव पर आ नामो, बोल उठगे आत्मराम ॥६॥

बोलो०

कुं कुं देने आत्ममगन मे, योगी-दुदेव की सत्य लगन में।
 आसुरानि से तत्व लगन म, वारण गुरु से श्रुतचितन में॥
 स्वाद्वद की सत्य जगन में, जगधारा के उलट चलन में ।
 सन्ध्याऽह्न ज्ञान चरण म, पाया अपना आत्मराम ॥५॥
 बोलो०

नग वेव्या निर्नन यन म, घना दुश्चा है सुन्दर धाम ।
 संता की यह तपोभूमि है, और निसड जी उसका नाम ॥
 वारण वरन गुरु ने जहा पर अत समय कीना विधाम ।
 ऐसे आत्मतत्त्व के ज्ञाता, गुरु को नित प्रति सदा प्रणाम ॥
 बोलो धधुओ यड़े प्रेम से, आत्मराम नय आत्मराम ॥६॥

५

रचयिता —

श्री बालू लाल डेरिया

संपादक—वारण जैन परिषद्

— प्रातः कालीन —

* विनयाणी-प्रार्थना *

ॐ कल्याणं विनयाणी । जय जय मां । मंगलपत्नी ॥

स्वाहाद नय के प्राङ्मुख में
बहे तुम्हारी धारा,
परम अहिंसा मार्ग तुम्हारा
निर्मल, प्यारा, प्यारा ।

ॐ । तुम इस युग की राणी । मंत्र गुणवाना ॥

जय (Choru)

अशरण शरणा प्रणतपालिका
माता नाम तुम्हारा ।
रोटि कोटि पतिता के दल को
तुमने पार उतारा ॥

क्या ज्ञानी क्या अज्ञानी ? तिर्यग् राणी ॥

जय (Chorus)

मोह-मान-मिथ्यात्व नेरु को
तुमने भस्म बनाया ।
जिमने तुम्ह नयन भर चला,
जीवन का फल पाया ॥

तुम मुक्ति-नगर की राणी । शिरा भरानी ॥

जय (Chorus)

— संन्या कालीन —

ॐ विनयायी-प्रार्थना ॐ

एतद् द्रव्यं त्वं भी विनयायि की रे ।

अतन्मयि म र - बुद्धिज्ञानि की रे । —आओ

म्यादा नय प्रथान

इश धन विमया प्राण

विश्व-प्रम की निधान

अध ह्य ने संसारं, भव-भयानि धी रे । —आओ

वन - मरण - सिधु-पोत

कुमवि तिमिर को रवि ज्योति

अगम ज्ञान की जो धो

अमृत धार पड़े जहा केवलज्ञानि की रे । —आओ

कुन्दकुन्द से विहार

तारण तरण से जल-यान्

हृष्ट निसके सुत महान

आओ रेदना करें उमी गुणयानि की रे । —आओ

जननि हम ई निरयलम्ब

पतित पावनी नू अम्य ।

तार, मत लगा विजम्ब,

'बंधन' सुरत ना विहार पतित प्राणि की रे । —आओ

— 'च चक्र' —

'सोऽहं' 'अहम्' कैः क्व
 ध्वनि से, त्रिभुवन के धर
 षोडह मन्य-यत्न हृत्पत्रे
 भव-भव ताप हर रे। तु
 गुरु दयाल तेर ज-सूर
 मेरे हृदय गुरु
 तू धन्वा 'चंचल' सार प्र,
 तुम साहस हम पर। तु

- 'सह'

★

— रात्रि हृदय —

६ गुरु-शांति ।

भक्त मन । काया-प-पत्र ।
 जेहि सुमरे भव-काल है
 अगुरु, अदेषी क प्र-प्र, प्राल ।
 गुरु-शांति, प्राल ॥



